निराला : रहस्यानुभूतियां

डॉ. आर.पी. वर्मा,
एसो. प्रो. एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय गोसाईंखेड़ा,
जनपद–उन्नाव, उ.प्र.

सामान्यतः प्रत्येक युग की कविता प्रवृत्ति और स्वरूप विधान की दृष्टियों से नहीं हुआ करती है। युग परिवेश के अनुरूप जीवन के अन्य क्षेत्रों के समान काव्य और कला के क्षेत्र में भी नव्यवाद एवं सिद्धान्त अंकुरित होकर पुष्पित, पल्लवित होते रहा करते हैं। छायावाद भी एक इसी प्रकार का पलावन है। ध्यातव्य बात यह है कि छायावाद का अंकुरण जिन परिस्थितियों में और जिस ढ़ंग से हुआ, उन्होंने आलोचकों के मस्तिष्कों के तन्तु हिला दिये। छायावाद के सम्बन्ध में सबसे अधिक भ्रान्तिपूर्ण धारणा यह रही है कि अधिकांश आलोचक छायावाद और रहस्यवाद के मध्य कोई निश्चित विभाजन रेखा खींचने में असमर्थ रहे, बल्कि छायावाद को ही रहस्यवाद का एक रूप समझ बैठे। इस प्रकार के भ्रान्तियों के जनक उल्लेखनीय मत ये है–

1. छायावाद का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहां कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम का अनेक प्रकार से चित्रण करता है। – **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल**
2. 'इसी से इस अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोप कर उसके निकट आत्म निवेदन करना इस काव्य (छायावादी काव्य) का दूसरा सोपान बना, जिसे रहस्यमय रूप के कारण रहस्यवाद नाम दिया गया।' – **महादेवी वर्मा**
3. 'छायावाद ही जब अध्यात्म का पर्दा अपने ऊपर डाल लेता है तो वह रहस्यवाद का रूप धारण कर लेता है।' – **डा0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय**

यदि तत्वतः एवं गम्भररा से इन मतों की समालोचना की जाये तो ये निराधार ही सिद्ध होते हैं। जहां तक शुक्ल जी के मत का सम्बन्ध है, उसका खंडन स्वयं शुक्ल जी ने ही यह मानकर कर दिया है कि सभी छायावादी कविताएं रहस्यवादी नहीं कही जा सकती। वे लिखते हैं–

'उनमें से (छायावादी कविताओं में से) कुछ तो विलायती अभिव्यंजनावाद के आदर्श पर रची हुई बंगला कविताओं की नकल पर, और कुछ अंग्रेजी कविताओं के लाक्षणिक चमत्कारपूर्ण काव्य, शब्द प्रति शब्द उठाकर जोड़ी जाती है।'

महादेवी का 'छायावाद के दूसरे सोपान को रहस्यवाद मानना' भी असंगत है। महादेवी के मन के अनुसार पहले छायावाद का आविर्भाव होना चाहिए और बाद में रहस्यवाद का इतिहास इसके बिल्कुल विपरीत है। ऐतिहासिक दृष्टियों से पहले रहस्यवाद की उत्पत्ति होती है और उसके बहुत वर्ष बाद छायावाद की। रहस्यवाद का इतिहास काफी प्राचीन है। हिन्दी कविता में रहस्यवाद 14–15वीं शताब्दी से ही मिलना आरम्भ हो जाता हैं जबकि छायावाद का जन्म सं0 1909 में प्रसाद की कविताओं से माना जाता है।

छायावाद का जनक कौन है? इस प्रश्न के उत्तर में मत वैभिन्य हो सकता है, किन्तु छायावाद आधुनिक काल की ही एक विशेष प्रवृत्ति है, इस तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता।

इसी प्रकार डा0 वार्ष्णेय का मत भी मान्य नहीं है। अध्यात्म का पर्दा डालकर रहस्यवाद छायावाद नहीं बन जाता, बल्कि रहस्यानुभूति तो छायावाद की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। प्रकृति के विभिन्न अनवरत परिवर्तनशील रूपों के प्रति जब छायावादी कवि के मन मस्तिष्क में अनेक प्रकार के प्रश्न जन्म लेने लगते हैं, वह रहस्यवाद के क्षेत्र में में पदार्पण कर पाती है। इसी कारण रहस्यवाद को धन्यवाद कर विकसित प्रवृत्ति स्वीकारते हैं।

छायावाद और रहस्यवाद में अनेक समानताएं हैं, जिन्होंने अनेक आलोचकों को भ्रम में डाल दिया है। इन समानताओं में से प्रमुख ये हैं–

1. छायावाद में रहस्यवाद की भांति उद्दाम वैयक्तिकता, सौन्दर्य, एवं प्रेम की प्रधानता है। सौन्दर्य और प्रेम स्वयं जिज्ञासा तथा रहस्य के विषय हैं, फिर चाहे वे प्रकृति से सम्बन्ध रखते हों, व्यक्ति से सम्बन्धित हों, या ब्रह्म से।
2. छायावाद और रहस्यवाद दोनों में आत्मानुभूति के प्रकाशन का प्राधान्य है। वास्तव में स्वानुभूतियां दोनों की जनक हैं।
3. दोनों ही एक ओर तो सहजता मौलिक तथा दूसरी ओर प्रगतिशील प्रवृत्तियां भी हैं। यदि रहस्यवाद ने मध्ययुग के जनमानस में भारततीय आदर्श तथा निर्वाण साधना पद्धति को पुनर्जीवित किया तो छायावाद ने आधुनिक युग की रूढ़ियों के विरूद्ध विद्रोह किया।

इन समानताओं के होते हुए भी छायावाद और रहस्यवाद में पर्याप्त अन्तर है–

1. छायावाद में आत्मा और आत्मा का अर्थात् ससीम के साथ सम्बन्ध रहता है, किन्तु रहस्यवाद में आत्मा और परमात्मा का अर्थात् समीम और असीम का गठबन्धन होता है। श्री शांति प्रिय द्विवेदी के शब्दों में – 'छायावाद में यदि एक जीवन के साथ दूसरे जीवन की अभिव्यक्ति है, अथवा आत्मा का आत्मा में सन्निवेश है तो रहस्यवाद में आत्मा का परमात्मा के साथ। एक में लौकिक अभिव्यक्ति है तो दूसरे में अलौकिक।'
2. छायावाद में अव्यक्त या परोक्ष सत्ता के प्रति केवल जिज्ञासा होती है, किन्तु रहस्यवाद में उनके प्रति प्रेम भाव प्रमुख है। जिज्ञासा का भाव विकसित होकर छायावादी को भी रहस्यवाद के क्षेत्र में ले अवश्य जाता है।
3. छायावादी कवि प्रकृति के कण–कण में किसी अव्यक्त असीम सत्ता को छाया देकर आश्चर्य से पुलकित हो उठता है, किन्तु रहस्यवादी कवि को प्रकृति के कण–कण में परोक्ष प्रियमत के प्रणय सन्देश सुनाई देते हैं।
4. रचना विधान की दृष्टि से भी दोनों में अन्तर है। छायावाद में छन्दों का वैविध्य है और रहस्यवाद में एकरूपता गीति शैली का ही प्रधान्य है। यही कारण है कि रहस्यवाद में किसी प्रबंध काव्य की सृष्टि न हो सकी, जबकि छायावाद में अनेक प्रबन्धकाव्य लिखे गये हैं।

इस प्रकार रहस्यवाद और छायावाद एक नहीं, बल्कि अपने अपने युगों की दो विभिन्न एवं विशिष्ट काव्य धाराएं हैं। प्रो0 शिवनन्दन प्रसाद के शब्दों में–

'वस्तुतः छायावाद काव्य में उस दृष्टिकोण को कहना अधिक संगत है जिस में ब्रम्ह जगत् और व्यक्ति के आन्तरिक जगत् में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव की स्थापना होती है। इसके आगे रहस्यवाद में उस स्थिति का चित्रण रहता है जब समीम आत्मा विश्व के सौन्दर्य में असीम परमात्मा के लिए सुन्दर रूप का दर्शन कर उससे तादात्म्य स्थापना के ही निमित्त आकुल हो और माधुर्य भाव पर आधारित प्रेम की साधना उस अनन्त अगोचर से तदाकार होने का प्रयास करती है।' फिर भी यह तो स्वीकारना पड़ता है कि दोनों का साहचर्य चिरन्तन है। यह चिरनतानता हमें मध्यकालीन रहस्यवादी काव्य चेतनाओं में भी स्पष्ट दिखाई देती है। वहां भी रहस्यवादी व्यक्तियों के लिए प्रकृति को ही रहस्य वादियों के समान माध्यम बनाया गया है।

रहस्यवाद के दो भेजद हैं–साधनात्मक रहस्यवाद और भावात्मक रहस्यवाद। साधनात्मक रहस्यवाद प्रमुखतः शास्त्र एवं साम्प्रदाय की लकीरों पर चलता है। इसमें ब्रह्म, जीव, प्रकृति और हठयोग आदि की तात्विक मान्यताओं का विवेचन होता है। इसमें अज्ञात सत्ता के प्रति प्रेम भावना प्रदर्शित करने का कोई अवकाश नहीं है, क्योंकि इसमें चिन्तन की प्रधानता रहती है, इसीलिए इसे 'दार्शनिक रहस्यवाद भी कहते हैं। भावात्मक रहस्यवाद का भौतिक क्रियाओं, शास्त्रों, विशिष्ठ सम्प्रदायों एवं प्राचीन रूढ़िय से विशेष सम्बन्ध नहीं रहता। इसमें समीम आत्मा का असीम सत्ता प्रणय ग्रन्थन किया जाता है, जिस कारण इसमें विरह निवेदन की प्रधानता रहती है। इसका मूल स्वर अद्धैतवाद है, पर वह अद्धैतवादी चेतना भी सर्वांशतः साम्प्रदायिक या शास्त्रीय चिन्तन से संयत नहीं रहा करती। अतः भावात्मक रहस्यवादी अपने अंतिम सोपान पर पहुंचकर उस विराट सत्ता के साथ अवश्यमेव तादात्म्य स्थापित करके तदाकार ही हो जाता है, वह अपने लाल की लाली देखकर स्वयं भी लाल बन जाता है, अथवा प्रियतम के मधुर भावना से उसे समस्त जगत मधुर दिखाई देने लगता है। भावात्मक रहस्यवाद में चिन्तन गौण और भाव प्रधान होते हैं। इसी कारण इसे 'काव्यात्मक रहस्यवाद' भी कहते हैं।'

छायावादी कवियों में निराला का महत्त्वपूर्ण स्थान है। एवं गौरवपूर्ण इनकी दार्शनिकता अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा अत्यन्त गूढ़ और चिन्तन प्राधन है। यदि यह कहा जाये कि छायावाद के क्षेत्र में इन्होंने ही दार्शनिक रहस्यवाद की सफल प्रतिष्ठा की तो अनुचित न होगा। वास्तव में इनका व्यक्तित्व ही निराला हैं, जिसके विशाल मस्तिष्क में विवेकानन्द से प्रभावित दर्शन के तर्क वितर्क में और जिसके भावुक हृदय में कवि की कोमल भावनाओं की पयस्विनी अजस्र धारा से प्रभावित होती रहती थी। सुप्रसिद्ध कवि कालरिज का कथन है–

'No man was ever a great poet without being at the same time a profound philosopher'

अर्थात् गम्भीर दार्शनिक हुए बिना कोई भी कवि महान नहीं बन सकता। निराला के विषय में ये पंक्तियां बिल्कुल सही हैं। उनके व्यक्तित्व में दर्शन और कवित्व का अद्भुत सामांजस्य मिलता है। इस प्रकार का विराट सामांजस्य अन्यत्र कहीं भी स्यात सुलभ नहीं है।

निराला की रहस्यानुभूति में केवल कवि की अनुभूतियां नहीं 'एक दार्शनिक का गूढ़ चिंतन भी हैं, इसलिए इसका दर्शन सरस भी है और नीरस भी इसी कारण अनेकशः उसमें दुरूहता भी आ गई है। वह कहीं–कहीं काव्य के सामान्य पाठकों का विषय नहीं रह गया। इन्होंने परमात्मा, आत्मा आदि सभी विचारों को एक दार्शनिक की भांति सोचा है और एक कवि की भांति उनका निरूपण किया है। तो भी गहनता सहजगम्य नहीं कही जा सकती। जहां तक आत्मा परमात्मा के संबंधों का प्रश्न है, ये इस विषय में अद्धैतवाद के समर्थक हैं। 'तुम और मैं' कविता इस विषय की

प्रसिद्ध कविता है। इसमें जीव और ब्रह्म की तात्विक एकता स्थापित की गई है। यथा–'

"तुम मृदु मानस के भाव
और मैं मनोरंजनी भाषा
तुम नन्दन वन घट विपट
और में सुख शीतल तल शाखा
तुम प्राण और मैं काया,
तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म
मैं मनोमोहिनी माया।"

यहां वेदान्त के साथ–साथ सांख्य दर्शन का समन्वय भी दर्शनीय है। वेदान्त का अद्वैतवाद यहां और सांख्य दर्शन के 'प्रकृति पुरूषों' के माध्यम से व्यक्त हुआ है। यह तात्विक एकता का निरूपण कबीर जैसा ही है, अन्तर है तो केवल प्रतिपादन शैली का। कबीर की भाषा एक 'मसि कागज न छूने वाले' की थी और निराला की भाषा छायावाद से परिष्कृत एक सुशिक्षित एवं विचारक की। यह कविता निराला की उन कविताओं में अग्रगण्य है जो अपनी दार्शनिकता एवं बौद्धिकता के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध है। बौद्धिकता के प्राधान्य के कारण ही कहीं–कहीं इनकी कविताएं कविता न रहकर केवल दर्शन का प्रतिपादन करने वाली नीरस पंक्तिमात्र बन कर रह गई हैं। यथा–

"'अति गहन विपिन में जैसे
गिरि के तट काट रही है–
नव जल धाराएं वैसे
भाषाएं सतत बही है।'"

निराला का अपने ब्रह्म में अटूट विश्वास है। इनका मत है कि इस नाम रूपात्मक जगत का संचालन करने वाली कोई अदृश्य, अज्ञात एवं चेतन सत्ता अवश्य है। उसे ही सम्बोधित करते हुए कवि कहता है–

"एक दिन थम जायेगा रोदन
तुम्हारे प्रेम अंचल में,
लिपट स्मृति बन जाएंगे कुछ कन
कनक सींचे नयन जल में।"

कहीं–कहीं निराला ने भी स्वामी विवेकानन्द की भांति अपने आराध्य को नारी रूप में संबोधित किया है–

"प्रिय कोमल पदगामिनी मन्द उत्तर
जीवनस्मृत तरू गुल्मों की पृथ्वी पर
हंस–हंस निज पथ आलौकित कर
नूतन भर दो।"

जिस प्रकार विवेकानन्द जीव और ब्रह्मा के मध्य माया के आवरण को स्वीकार करते हैं, उसी प्रकार निराला की भी यही मान्यता है। यही मान्यता मध्यकालीन भक्तों और रहस्य साधकों की भी रही है। वास्तव में भारतीय दर्शन और सब प्रकार की साधनाओं के मूल में यही मान्यता काम करती हुई देती है। माया के खेल विचित्र है और तदनुसार उसके रूप भी विचित्र त्रताओं से भरे हुए हैं। इसीलिए वह कभी तो कवि को किसी चित्र की कालिमा जैसी दिखाई देती है और कभी किसी कमनीय की कमनीयता। कभी किसी दुःखहीन की आह प्रतीत होती है तो कभी किसी तरू की करूणा वनिता लता–

"तू किसी के चित्र की है कालिमा
या किसी कमनीय की कमनीयता,
या किसी दुःख दीन की है आह
या किसी तरू की करूणा बनिता लता।"

जब यह माया का आवरण हट जाता है तो जीव और ब्रह्म एकाकार हो जाते हैं। भारतीय अद्वैत दर्शन के अनुसार ब्रह्म के साथ एकाकार होने के लिए अनेक सीढ़ियां क्रमशः चढ़नी पड़ती हैं। उन्हें रहस्य साधना की अवस्थाएं कहते हैं। इस

तादात्म्य प्राप्ति तक जीव को जो अनेक सोपान पार करने पड़ते हैं। निराला के अनुसार उन सोपानों की संख्या तीन है–

'उसके बाग में बहार, देखता चला गया।
कैसे फूलों का उभार, देखता चला गया।'

इसे जिज्ञासा की स्थित में कहा जा सकता है। इसे उत्सुकता, खोज और समर्पण की अवस्था भी कहते हैं।

मैनें उन्हें दिल दिया, उनका दिल मुझे मिला।
दोनों दिलों का श्रृंगार, देखता चला गया।
'टूटी भेद की दीवार, देखता चला गया।'

इसी मिलन की स्थिति या अवस्था भी कहते हैं। यही वह अन्तिम सोपान है जहां जीव और ब्रह्म के मध्य की द्वैत भावना समाप्त हो जाती है और कबीर के शब्दों में लाल की लाली से लाल होकर आत्म स्वयं भी लाल बन जाती है। अर्थात् आत्मा परमात्मा एकमेक हो जाते हैं। किसी भी प्रकार भेद नहीं रहता। यह उपभेद की स्थिति भी है। इसलिए कवि स्वयं को ब्रह्म मान बैठता है।

'वहां कहां कोई अपना सब
सत्य नीलिमा में लयमान
केवल में, केवल में,
केवल मैं, केवल मैं ज्ञान।'

अपने पराये के समस्त भेद भाव अन्तर्हित होकर, मैं या अहं ब्रह्माऽस्मि' की ध्वनि मुखरित होने लगती है। इसी को सूफियों ने 'अनजले हक' या हकीकता की अन्तिम चरण स्थिति भी कहा है। जिस प्रकार निर्गुणिये सन्तों के शरीर को आत्मा की एक सीमित परिधि माना है और आत्मा को इससे मुक्त करने का प्रयास किया है उसी प्रकार निराला अपनी आत्मा को शरीर की इस ससीमता में बद्ध करना नहीं चाहते। वे मिलन की अनुभूति से भरकर उठते हैं–

"मैं न रहूंगा गृह के भीतर
जीवन में रे मृत्यु के विचर
यह गृहा गर्त प्राचीन रूद्ध
नव दक प्रचार वह किरण शुद्ध।"

इतना होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि निराला का दर्शन सन्त कवि कबीर आदि का सा वैराग्य प्रधान है। निराला का दर्शन आधुनिक तत्वों से समन्वित है, अतः उनका अपना ही है। उनके दर्शन की अपनी कुछ विशेषताएं हैं जिसमें से एक तो यह है कि निराला दार्शनिक तो हैं, किन्तु वैरागी नहीं। जग जीवन के प्रति इनकी आत्मा बराबर बनी रहती है, देश प्रेम से कवियों की भांति निराला दर्शन में निराशा नहीं है। यही कारण है कि दर्शन की गहन ग्रन्थियों में बंधकर भी कवि वास्तविकता की भूमि पर खड़ा हो जाता है और पृथ्वी की पीड़ाएं उसकी कविताओं में मुखरित हो उठती हैं।

एक बात और, अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा निराला अधिक चिंतनशील रहे हैं, उन्हें व्यवहार जगत की कटुताओं से भी अधिक दो चार होना पड़ा है। उनके शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक आघात सहने पड़े हैं। इसलिए इनका दर्शन प्रायः शुष्क और नीरस बन गया है, किंतु जहां उसे कवि की सहृदयता अनुभूति का सहयोग मिलता है, वहां वह अवश्य ही काव्यमय और रमणीय बन गया है श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में–

'भावना द्वारा अनुभूति का सहयोग मिलता है, काव्य के लिए वही दार्शनिकता अभीष्ट' एवं ग्राह्य है निराला जी की आध्यात्मिक पंक्तियों तथा इन की कविताओं में जहां–जहां इस प्रकार का अनुभूति दर्शन मिलता है, वहां हृदय का संगीत है।

संदर्भ

1. निराला – सं. डॉ. विश्वनाथप्रसाद तिवारी, पृ. 11
2. निराला की गीत काव्य – संध्या सिंह, पृ. 08
3. निराला के विविध आयाम – डॉ. ए.के. सिंह, पृ. 91
4. निराला और मुक्ति बोधः चार लंबी कविताएं – नंदकिशोर नवल, पृ. 36
5. हिंदी साहित्य का इतिहास – रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 26
6. निरालाः आत्महंता आस्था – दूधनाथ सिंह, पृ. 84
7. महाप्राणि निराला – गंगा प्रसाद पाण्डेय, पृ. 83
8. निरालाः रहस्य अनुभूतियां – डॉ. रामप्यारे तिवारी, पृ. 42

Copyright © 2017 *Dr R.P Verma*. This is an open access refereed article distributed under the Creative Common Attribution License which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.